चिकित्सा

चश्मे का पावर बदलना आपके हाथ में

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

मेरे दोस्त और भूतपूर्व सहकर्मी डॉ. सुशील चंदानी ने मुझे द न्यूयॉर्क टाइम्स के 10 दिसम्बर, 2002 के अंक में छपी एक रिपोर्ट भेजी। यह खबर खुद एड्जेस्ट किए जा सकने वाले चश्मों के बारे में थी। यानी अपनी नज़र के हिसाब से चश्मे को सही करना अपने हाथ में। ऑप्टोमेट्रिस्ट (नेत्र सम्बंधी उपकरणों के निर्माता) की ज़रूरत या मदद दरकार नहीं। समय के साथ आंख पर फोकस करने के लिए लेंस का पॉवर बदलना पड़ता है मगर इस नए लेंस का पॉवर अपने आप घटता बढ़ता रहेगा, सो लेंस बदलने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी। एक बेहद उपयोगी और इस्तेमाल किया जा सकने वाला उपकरण है यह लेंस।

ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय के डॉ. जोशुआ सिल्वर कुछ समय से इस पर काम कर रहे हैं। वे कहते हैं कि अब उनके पास एक आसान मॉडल है जिसे उपयोगकर्ता अपनी ज़रूरत के हिसाब से एड्जेस्ट कर सकते हैं। चश्मे के फ्रेम और कांच सहित इसकी कीमत 10 डॉलर है। उन्होंने इन्हें नाम दिया है 'एडाप्टिव ग्लासेज़' (अनुकूलन योग्य चश्मे) और इन्हें अपनी कम्पनी एडाप्टिव आई केयर में बनाना शुरू किया है। रिपोर्ट है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इसमें रुचि दिखाई है और डॉ. सिल्वर से अनुरोध किया है कि वे इन चश्मों का इस्तेमाल घाना के ज़रूरतमंदों के बीच करें।

समस्या की विकटता

क्यों विश्व स्वास्थ्य संगठन और घाना ही क्यों? जवाब आसान है। घाना में ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्हें या तो बिलकुल नहीं दिखता या फिर बहुत कम दिखाई देता है। इसका कारण है उनकी कमज़ोर नज़र के हिसाब से सही चश्मों तक उनकी पहुंच न होना। समस्या केवल घाना के साथ ही नहीं है। तकरीबन सभी विकासशील देशों में ऐसी ही स्थिति है। यहां तक कि अमरीका जैसे कुछ विकसित देश भी इससे अछूते नहीं हैं।

इस समस्या से ग्रस्त लोगों की संख्या विकराल है। भारत का ही उदाहरण लेते हैं। हमारे देश में कोई 95 लाख लोग मोतियाबिंद के कारण अपनी नज़र खो बैठे हैं। जबकि अन्य 30 लाख लोग आंखों में अपवर्तन सम्बंधी दोष (रिफ्रेक्टिव एरर) के ठीक न होने के वजह से अंधत्व भोग रहे हैं। अपवर्तन दोष यानी जब प्रतिबिंब आंख के पर्दे (रेटिना) पर न बनकर आगे-पीछे बने।

दृष्टिहीन बने रहना उस वक्त असहनीय हो जाता है जब देखने के लिए केवल सही पावर वाले लेंस की ज़रूरत हो। विश्व स्वास्थ्य संगठन के डॉ. बॉर्न थेलिफोर्स का अनुमान है कि विश्व के लगभग 1 अरब लोगों की नज़रें मात्र चश्मे के इस्तेमाल से ठीक हो सकती है। वस्तुस्थिति यह है कि इन चश्मों के अभाव में लोग दृष्टिहीनता भोगने को अभिशप्त हैं। अगर उन्हें ऐसे सस्ते अनुकूलन योग्य चश्मे दिला दिए जाएं जिनमें वे अपनी नज़र के हिसाब से लेंस को एड्जस्ट कर सकें तो स्थिति में काफी सुधार आ सकता है।

इतिहास

लेंस से दृष्टि के अपवर्तन सम्बंधी दोषों को ठीक करने का लम्बा इतिहास रहा है। रोमन लेखक सिनेका (4 ईसा पूर्व-65 ईस्वीं) कांच के एक पानी भरे ग्लोब में से देखकर किताबें पढ़ा करते थे। एक सहस्राब्दि बाद भिक्षु कांच के गोले के टुकड़ों से अक्षरों को बड़ा करके देखा करते थे - यह एक आवर्धित करने वाला कांच था जिसे वे 'पढ़ने वाला पत्थर' कहा करते थे। वैसे तो चीनी लोग यह दावा करते हैं कि उन्होंने फ्रेम ईजाद की है ताकि कांच के दो लेंस को उसमें अटकाया जा सके लेकिन सबसे प्राचीन प्रमाण युरोप की एक पेंटिंग में मिले हैं। 1352 में डी. मोडेना की पेंटिंग

में दो लेंस देखे जा सकते हैं जो बीच से जुड़े हुए हैं। ऐसे चश्मों को उनकी सही जगह पर रोके रखना काफी असुविधाजनक था। लेकिन शीघ्र ही इस पर पार पाया जा सका। पहले टोपी के नीचे टेप चिपकाकर चश्मे को अपनी जगह पर टिकाए रखा गया (यह प्राचीन चीनी तरीका था)। लेकिन चश्मे का विचार 1718 में लंदन के नेत्र विशेषज्ञ एड्वर्ड स्कारलेट को सूझा। असुविधा को और कम करने के लिए दो गोल फ्रेम के बीच नाक पर टिकने वाली डंडी लगाई गई। ये आज दिखने वाले फ्रेम के पूर्वज थे और सोने-चांदी, स्टील, मछली की हड्डी, सींग, लकड़ी, चमड़े और फिर प्लास्टिक के बने होते थे। लगता है कि बाई-फोकल का आविष्कार अमरीकी विशेषज्ञ बेंजामिन फ्रेंकलिन ने किया था। इनकी दूर की व पास की दोनों नज़रें कमज़ोर थीं। बार-बार चश्मा बदलने से तंग आकर उन्होंने लेंस को आधा काट कर दोनों को एक साथ एक फ्रेम में जोड़ दिया। इस तरह बना पहला बाई फोकल चश्मा।

पिछले एक दशक में कॉन्टेक्ट लेंस बहुत लोकप्रिय हो गए हैं और अब तेज़ी से चश्मों की जगह ले रहे हैं। इनके आविष्कारक को कोई नहीं जानता। 1801 में अंग्रेज़ वैज्ञानिक थॉमस यंग ने अपने सूक्ष्मदर्शी में से छोटे लेंस निकाले, उसके किनारों पर मुलायम मोम मला और उसे अपनी आंखों में फिट कर लिया। जब तक उन्होंने इसे लगाए रखा, दूर की नज़र बेहद कमज़ोर हो गई। इसके बाद उन्होंने दृष्टि दोष को ठीक करने के लिए ज़रूरी पावर की गणना की। स्विस नेत्र विशेषज्ञ फिक ने ऐसे चश्मे बनाए जिसके लेंस आंख की सतह से सीधे सम्पर्क में थे। इसमें उन्होंने द्रव की परत का इस्तेमाल किया। उन्होंने इन्हें कॉन्टेक्ट लेंस नाम दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास एक अमरीकी डब्ल्यू. फेनबूम ने पहले पॉलिमर कॉन्टेक्ट लेंस का निर्माण किया।

तरल लेंस

समय के साथ-साथ आंख की अपवर्तन क्षमता (रिफ्रेक्टिव पावर) भी आम तौर पर बदलती रहती है इसलिए नया लेंस लगाना ज़रूरी हो जाता है। गरीब या निरक्षर लोग अक्सर इतना खर्च वहन नहीं कर पाते हैं या चश्मा बनाने वाले की दुकान में जाकर लेंस बदलवाने की ज़रूरत से अनभिज्ञ रहते हैं या फिर इस मुसीबत को मोल लेने की ज़हमत नहीं उठाते हैं। कितना अच्छा होता अगर ऐसे चश्मे उपलब्ध होते जिनके लेंस का पावर अपने आप और लगातार आंख के हिसाब से बदलता रहता। एक तत्व से बने विविध पावर वाले लेंस को बनाने का प्रयास पहले भी हुआ है लेकिन कोई संतोषजनक परिणाम न मिला। ऐसे में डॉ. जोशुआ सिल्वर का आविष्कार उल्लेखनीय है। चूंकि आंख की बदलती परिस्थिति के हिसाब से लेंस की फोकल लम्बाई लगातार बदलना है इसलिए लेंस बनाने के लिए ठोस पदार्थ का चुनाव सही नहीं होगा। यही कारण है कि उन्होंने द्रव भरे लेंस चुने ताकि हरेक लेंस को स्वतंत्र रूप से +6 से -6 डाईऑप्टर्स के रेंज में एड्जेस्ट किया जा सके। इस बन्द तरल लेंस की जोड़ी को फिर फ्रेम में चढ़ाया जाता है और प्रत्येक लेंस को आंख की ज़रूरत के हिसाब से स्वतंत्र रूप से एड्जेस्ट किया जाता है।

लेंसों की प्रकाशीय गुणवत्ता की जांच की गई और उसे सामान्य इंसानी आंख के तुल्य पाया है। इसके अलावा यह नया लेंस परम्परागत कांच के लेंस के समान ही पाया गया है। इन नतीजों से लैस होकर डॉ. सिल्वर ने अपने साथियों के सहयोग से अक्रा (घाना) के कोले-बू अस्पताल में और ग्रामीण क्षेत्रों में इसके परीक्षण किए। हालांकि बहुत कम लोगों पर इसका परीक्षण किया गया लेकिन यह प्रयास काफी सफल रहा। पाया गया कि इस विधि से केवल उन्हीं लोगों का दृष्टि दोष दूर किया जा सकता है जिन्हें पास की नज़र के लिए गोलीय लेंस की ज़रूरत है।

आगे की राह

घाना के कुछ डॉक्टर इसे लेकर काफी उत्साहित हैं। लेकिन कुछ इन चश्मों के टिकाऊपन को लेकर चिन्तित हैं - इनका पावर कितने समय तक बना रहेगा और क्या इनमें भरा तेल या इनका आकार समय के साथ बिगड़ता जाएगा। विषम दृष्टि के मामले में भी यह काम नहीं आता। इस संबंध में मेरी जिज्ञासा का जवाब डॉ. ब्रेन हॉल्डेन (एक महान नेत्र विशेषज्ञ और ऑस्ट्रेलिया, सिडनी, न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय के कोऑपरेटिव रिसर्च सेंटर फॉर आई रिसर्च